REVIEW OF RESEARCH

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 1 | OCTOBER – 2017

आचार्य रामचंद्र शुक्ळ कृत'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में स्त्री

डॉ.पूनम कुमारी सहरावत
अस्सिटेंट प्रोफेसर ,भगिनी निवेदिता काळेज, दिळळी विश्वविद्यालय.

सार :–

समकालीन समय इतिहास के एकार्थीपन और सार्वभौमिकता को चुनौती दे रहा है। आज इतिहास किसी स्थायी और अपरिवर्तनीय अवधारणा का नाम नहीं है, बल्कि इतिहास भी प्रयोगकर्त्ता के अनुसार अपने अर्थ और निष्कर्ष बदल लेता है। अतः प्रत्येक इतिहास की प्रस्थापनाएँ, इतिहासकर्त्ता के उद्देश्य से संचालित होती है।प्रस्तुत भोध–पत्र का उदे यइसी विचार भूमि को आधार बनाकरआचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास में स्त्री–ळेखन की स्थिति पर प्रका ा डाळना है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास–ग्रंथ हिंदी साहित्येतिहास की परम्परा में मीळ का पत्थर है, ळेकिन क्यास्त्री–ळेखन के संदर्भ में भी यहमीळ का पत्थर है, यह सोचने का विशय है। इस प्र न का उत्तर कुछ हद तक उनके इतिहास में ही छुपा है, ळेकिन बाकी का उत्तर उसके बाहर समय–समाज मेंनिहित है। वे अपने इतिहास की भूमिका मेंलिखते हैंकि वे साहित्य के विचार–श्रृंखलाबद्ध इतिहास की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। वे अपने से पहले लिखे गए इस इतिहास–ग्रंथों को 'कविवृत्त संग्रह' कहते हैं, सच्चे साहित्येतिहास का दर्जा नहीं देते।

साहित्येतिहास को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं:''शिक्षित जनता की जिन–जिन प्रवृत्तियों के अनुसार हमारे साहित्य स्वरूप में जो–जो परिवर्तन होते आए हैं, जिन–जिन प्रभावों की प्रेरणा से काव्यधारा की भिन्न शाखाएँ फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक् निरूपण तथा उनकी दृष्टि से किए गए सुसंगत काल–विभाजन के बिना साहित्य के इतिहास का सच्चा अध्ययन कठिन दिखाई पड़ता था।''[1]

साहित्येतिहास की परिभाषा की तरह ही 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखते समय आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सामने स्पष्ट उद्देश्य तय थे। पहळा विश्वविद्यालयों में हिंदी की उच्च शिक्षा का विधान होने से हिंदी साहित्य के विचार–श्रृंखलाबद्ध इतिहास की आवश्यकता।दूसरा 'हिंदी शब्द सागर' समाप्त हो जाने पर उसकी भूमिका के रूप में भाषा और साहित्य के विकास का रूप स्थिर करना पड़ा।

आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास की सामग्री का स्रोत सन् 1900–1910 तक काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा राज पुस्तकालयों व लोगों के घरों में अज्ञात पड़ी पुस्तकों को खोजने की योजना स्वरूप प्राप्त सामग्री पर आधरित है। अतः आ॰ शुक्ल का उद्देश्य या दृष्टि किसी अन्य अज्ञात को खोजने पर नहीं है। उपलब्ध सामग्री को नि

आचार्य शुक्ल के उद्देश्यों ने उनके साहित्येतिहास के ढांचे और उसके मानदण्ड (Pattern) को निर्धारित कर दिया।

आचार्य शुक्ल के हिंदी–साहित्येतिहास में ये स्पष्ट है कि इतिहास (साहित्येतिहास) वहाँ अतीत की हू–ब–हू प्रतिकृति नहीं है, बल्कि अतीत से उन्होंने जो उत्पादित करना चाहा वही उन्होंने इतिहास को रूप दिया है।

शुक्ल जी के साहित्येतिहास का दायरा (expansion) निम्न चार चीजों से मिलकर बनता है।

पहळा ,रचनाओं और रचनाकारों की प्रसिद्धि
दूसरा, रचनाओं की किसी विषय पर प्रचुरता
तीसरा, हिंदी भाषा के रूपों की स्थिरता और विकास पर दृष्टि
चौथा,हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों के निर्धारण पर बल

अतः आ॰ शुक्ल की इतिहास दृष्टि तात्युगीन साहित्यिक व भाषाई आवश्यकताओं से निर्धारित रही है। लेकिन आज के संदर्भ में जब हिंदी भाषा के नए संदर्भ उपज रहे हैं और इतिहास की दृष्टि भी प्रवृत्ति निर्धारण से आगे की पद्धतियों को अपना चुकी है, ऐसे में आ॰ शुक्ल जी का इतिहास पुनर्पाठ का विषय बन जाता है। आ॰ शुक्ल जिस प्रकार भाषा का निर्धारण अपने ध्यान में रखते हैं, उसी तरह विधा का चुनाव और निर्धारण भी अपने उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही करते हैं।

[1]. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृ॰ 5

इतिहास की तरह ही साहित्येतिहास भी अतीत का कोई एकमात्र पक्का ढाँचा नहीं देता बल्कि वह भी साहित्येतिहासकार के अपने लक्ष्यों के आधार पर अतीत की रचनाओं व तथ्यों से कार्यकारण सम्बन्ध बनाते हुए उनकी व्याख्या मात्रा ही होता है।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसारः''इतिहासकार का सत्य नये अनुसंधानों से खण्डित हो जाता है....प्रामाणिक ग्रंथों के तथ्य, शायद ही कभी गलत पाये जायें, लेकिन उनका विवरण हमेशा गलत और निर्जीव होता है। इतिहास का सत्य क्या है? घटनाएं मरने के साथ फोसिल बनने लगती हैं, पत्थर बनने लगती हैं, दंतकथा और पुराण बनने लगती हैं। बीती घटनाओं पर इतिहास अपनी झिलमिली डाल देता है, जिससे वे साफ–साफ दिखायी न पड़े, जिससे बुद्धि की उंगली उन्हें छूने से दूर रहे... घटनाओं के स्थूल रूप को कोई भी देख लेता है, लेकिन उनका अर्थ वही पकड़ता है जिसकी कल्पना सजीव हो।''[2]

अतः इतिहास और अतीत के बीच तथ्यों, प्रमाणों और कल्पना का हाथ होता है। कोई भी इतिहास अतीत नहीं होता, वह अतीत का परिवर्द्धित, परिष्कृत या इतिहास निर्माता द्वारा ग्रहण किया गया रूप होता है। इसीलिए अब तक के तमाम इतिहासों और तमाम तरह के इतिहासों का पुनर्मूल्यांकन सम्भव है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास–उद्देश्यों से अपने इतिहास की प्रस्थापनाओं का सम्बन्ध बैठाते हुए लिखते हैंः''...मेरा उद्देश्य अपने साहित्य के इतिहास का एक पक्का और व्यवस्थित ढाँचा खड़ा करना था, न कि कवि कीर्तन करना अतः कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्रायः (रीतिकाल के संदर्भ में) 'मिश्र बंधु विनोद' से ही लिये हैं। यहीं कुछ कवियों के विवरणों में परिवर्तन और परिष्कार भी दिया है। ...यदि कुछ कवियों के नाम छूट गये या किसी कवि की किसी मिली हुई पुस्तक का उल्लेख नहीं हुआ, तो इससे मेरा कोई बड़ी उद्देश्य हानि नहीं हुई। इस काल के भीतर मैंने जितने कवि लिये हैं या जितने ग्रंथों के नाम दिए हैं उतने ही जरूरत से ज्यादा मालूम हो रहे हैं।''[3]

आधुनिक काल के संदर्भ में वे लिखते हैः ''कवियों और लेखकों के नामोल्लेख के संबंध में एक बात का निवेदन और है इस पुस्तक का उद्देश्य संग्रह नहीं था। इसमें आधुनिक काल के अंतर्गत सामान्य लक्षणों और प्रवृत्तियों के वर्णन की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है।''[4]

उपरोक्त तथ्य शुक्ळ जी के साहित्येतिहास में स्त्रीऔर स्त्री–ळेखन की स्थिति को समझने में काफी हद तक सहायक है।

सिद्धनाथ साहित्य और स्त्री

आ॰ रामचंद्र शुक्ल 84 सिद्धों में से 82 का नाम उल्लेख करते हैं, उनमें तीन सिद्ध योगिनियों (मणिभद्रा ,कनखपाला, लक्ष्मीकरा) का भी उल्लेख करते हैं। इस प्रकार आ॰ रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्येतिहास के इतिहास में पहली बार स्त्री का जिक्र 84 सिद्धों में अंतर्निहित 3 सिद्ध योगिनियों के प्रसंग में किया है।

सिद्धों की विचारधारा और सम्प्रदाय–व्यवहार पर शुक्ल जी लिखते हैंः

''वज्रयानियों की योगतंत्र साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का विशेषतः डोमिनी, रणकी आदि का अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था। सिद्ध कण्हपा डोमिनी का आह्वान गीत इस प गाते हैं'[5]अतः सिद्धों की साधना में स्त्रीब्राह्मणवादी धर्मिक आदर्शों के समान व्रज्य तो नहीं थीं, लेकिन उसका अबाध भोग था। यह परम्परावादी और संतत्व वाले साधुत्व के यूटोपिया से परे के छवि और आचरण थे। एक ओर लोक इनकी तरफ खिंचता भी था, वहीं दूसरी तरफ भोग–प्रवृत्ति के कारण स्त्री वर्ग में इस आकर्षण के प्रति सतर्कता भी थी।

शुक्ल जी सिद्धों की साधना पद्धति के बारे में लिखते हैंः''वज्रयान में आकर 'महासुखवाद का स्वप्न ही सहवास सुख के समान बताया गया। शक्तियों सहित देवताओं के युगनद्ध स्वरूप की भावना चली और उनकी नग्न मूतियाँ सहवास की अनेक मुद्राओं में बनने लगी।... ऊँच–नीच कई वर्ण की स्त्रियों को लेकर मद्यपान के साथ अनेक वीभत्स विधान बज्रयानियों की साध्ना के प्रधन अंग थे। सिद्धी प्राप्त करने के लिए किसी स्त्री का (जिसे शक्तियोगिनी या महामुद्रा कहते थे) भोग हया सेवन आवश्यक था।''[6]

उपरोक्त पंक्तियों में दो चीजें उभर रही हैंः पहळी सिद्ध–नाथों ने बौद्ध धर्म की उस परम्परा का पालन किया, जिसमें सिद्धार्थ की माँ बौद्ध धर्म में स्त्रियों के प्रवेश के लिए विद्रोह करती हैं और स्त्री भिक्षुणिओं का बौद्ध भिक्षुओं के समान प्रवेश भी कराया, यह हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना थी। सिद्धों ने इस प्रवेश को जारी रखा, यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। स्त्री–संसर्ग को या डोमिनी/रजकी के रूप में धर्म के भीतर नई जगह तो बनाई, किंतु सिद्ध–पुरुषों ने अपने अनुकूल स्त्रियों को भोग और साधना दोनों के लिए एक साथ उपलब्ध करने के लिए भी अपना द्वार खोला लगता है।

सिद्धों में बढ़ते रहस्यवाद के कारण ऊँच–नीच कई वर्ण की स्त्रियों को लेकर मद्यपान के साथ या अपनी अन्य साधनाओं

---

2. दिनकर, रामधरी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिग, एम॰ जी॰ रोड, इलाहाबाद, सोलहवां संस्करण, 2006, पृ॰ 11
3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृ॰ 8
4. वही, पृ॰ 8
5. वही, पृ॰ 26
6. वही, पृ॰ 28

में संलग्न रहने लगे थे। यहाँ स्त्रियों के संदर्भ में स्त्री वह भी निम्न वर्ण और जाति का भेद किए बिना भी सभी को खुले तौर पर शामिल करना एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है। जो एक साथ धर्म का सामंती रूप भी तोड़ता है, तो एक नया रूप स्थापित भी करता है। एक महत्त्वपूर्ण बिंदु इसमें यह भी है, कि सिद्ध तो स्वयं ही जाति–पाँति का खण्डन थे, लेकिन इन घुमंतु सिद्धों द्वारा वर्ण या जाति के विचार से परे स्त्रियों को साधना–भोग में शामिल करने का एक बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि इन स्त्रियों (उच्च कुल, वर्ण की स्त्री की तुलना में) को उपलब्ध(Access)करना आसान था। अतः इस पूरे प्रसंग में सबसे बड़ी कमी सिद्ध स्त्रियों के पद का उल्लेख या उनकी किसी भी अभिव्यक्ति का कोई संकेत/जिक्र नहीं होना है। जो इस पूरे प्रसंग को एक सिद्ध पुरुष ओर पुरुष इतिहासकार के निष्कर्षों व अवधरणाओं में तब्दील कर देता है। यहाँ जितने भी प्रसंग या उद्धरण हैं, वे सिद्धों की अभिरूचि को बताते हैं, इस तरह यहाँ पर सिद्ध स्त्रियाँ एक गेंद की तरह नजर आयी हैं। जिसके बारे में कभी सिद्ध कहते हैं''अपनी गृहिणी का उपभोग न करेगा तब तक पंचवर्ण की स्त्रियों के साथ विहार क्या करेगा?''[7]यहाँ उपभोग और विवाह शब्द सिद्धों में डोमिनी और रजकी की पूरी अवधरणा को पुनः ऐसे ही पितृसत्तात्मक मान्यताओं की ओर धकेल देती है, जहाँ स्त्री केवल सेवन का विषय है।

अपभ्रंश काल के संदर्भ में देखे तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल चारण भाटों के समय का निर्धारण करते या उनके बारे में लिखते समय उनकी वंशावलियों तक को छान लेते हैं। किन्तु मीरा के प्रकरण में छोटा सा परिचय देकर मामला समाप्त कर देते हैं। जबकि मीरा काव्य उस काल की स्त्री अनुभूतियों का सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज है। आ॰ शुक्ल अपने साहित्येतिहास में हिंदू जाति–मन का तो बार–बार व्यवहार करते हैं, लेकिन उसमें स्त्रियों की दशा क्या है? हिंदू स्त्री का मन क्या है? इसका नोटिस उनके साहित्येतिहास में सिरे से नही मिलता। स्त्रियों का जो भी प्रसंग आता है, वह पुरुष रचनाकारों के अनुषंगी रूप में आता है। वे कभी संक्षिप्तिकरण की शिकार होती है, कभी मूल्यांकन हीनता की।

निर्गुण धारा (प्रकरण–3)प्रेममार्गी (सूफी शाखा)

सूफी कवियों की अधिकांश रचनाओं के नाम नायिका के नाम पर रखे गए हैं। कुतुबन की मृगावती हो, पद्मावत हो या कोई तीसरी चौथी प्रेम कथा प्रायः सूफी भक्त कवियों ने स्त्री और भक्ति दोनों के लिए एक समान आदर्श प्रस्तुत किए हैं।

कुतुबन की मृगावती में 'रानी मृगावती' और 'सुंदरी' दोनों का अपने पति की मृत्योपरांत विरह में सती होने का प्रसंग है।

शुक्ल जी लिखते हैं:''राजकुमार बहुत दिनों तक (दोनों रानियों के साथ) आनंदपूर्वक रहा, पर अंत में आखेट के समय हाथी से गिरकर मर गया। उसकी दोनों रानियाँ प्रिय के मिलने की उत्कण्ठा में बड़े आनंद के साथ सती हो गयी।''[8] पद्मावत का अंत भी रानी पद्मावती और नागमती के सती होने के साथ होता है।अतः सूफी कवियों की प्रेम कथाओं में स्त्री आधारित शीर्षक होकर भी स्त्री के लिए आत्महंता और गौरव मण्डित आदर्श प्रस्तुत किया गया। अधिकांश रचनाओं में भी दो–दो रानियों, प्रेयसियों की कल्पना की गई। जिसमें एक–से दूसरी को कोई परेशानी नहीं होती।एक ओर इन रचनाओं में जहाँ तात्कालीन समय की स्त्रियों की सामाजिक दशा का भान होता है, (यद्यपि ये काल्पनिक हैं, किन्तु कल्पना का सम्बन्ध भी यथार्थ की स्थितियों में निहित होता है) वहीं उस समय प्रचलित स्त्री–विपक्षी लोक व्यवहार को मण्डित भी करते दिखते हैं। आ॰ शुक्ल इन कृतियों में हिंदू मन की सुसुप्त रागात्मकता को जगाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे में तो बताते हैं। लेकिन इन कथानकों की स्त्री पात्रा उस समाज से कैसे जुड़ी थीं? या उस समाज की स्त्री पर उनका क्या प्रभाव था? या शिक्षा के अभाव में इसका पाठ स्त्रियों से दूर था या नजदीक था? इन सब पर कोई संकेत नहीं मिलता।

प्रकरण (4) रामभक्ति शाखा

आ॰ रामचंद्र शुक्ल के साहित्येतिहास के इस प्रसंग में एक भी भक्त स्त्री का, उनके लेखन का कोई संकेत या उद्धरणी नहीं मिलती।

कृष्णभक्ति शाखा

''वैष्णव धर्म के साम्प्रदायिक स्वरूप का संगठन दक्षिण में हुआ। वैदिक परम्परा के अनुकरण पर अनेक संहिताएं उपनिषद, सूत्राग्रंथ इत्यादि तैयार हुए–श्रीमद् भागवत् में श्रीकृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन होने से भक्ति क्षेत्र में गोपियों के ढंग के प्रेम का माधुर्य भाव का रास्ता खुला। ... इसके प्रचार में दक्षिण के मंदिर की देवदासी प्रथा विशेष रूप से सहायक हुई। माता–पिता मंदिरों में लड़कियों को चढ़ा आते थे जहाँ उनका विवाह भी ठाकुर जी के साथ हो जाता था। उनके लिए मंदिर में प्रतिष्ठित भगवान की उपासना पति रूप में विधेय थी। इन्हीं देवदासियों में कुछ प्रसिद्ध भक्तिनें भी हो गयी हैं।''[9] इसके बाद आचार्य शुक्ल जी अंदाल भक्तिन का परिचय देते हुए लिखते हैं''दक्षिण में अदांल इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध भक्तिन हो गयी है जिनका जन्म संवत् 773 में हुआ था। अंदाल के पद द्रविड़ भाषा में 'तिरुरयावई नामक पुस्तक में मिलते हैं। अंदाल एक स्थान पर कहती है

7. वही, पृ॰ 30
8. वही, पृ॰ 85–86
9. वही, पृ॰ 127

''अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।''[10] ऐसा परिचय देकर आ॰ शुक्ल जी इनकी आलोचना करते हुए कहते हैं''इस भाव की उपासना यदि कुछ दिन चले तो उसमें गुह्य और रहस्य की प्रवृत्ति हो ही जायेगी।''[11] प्रस्तुत प्रसंग में शुक्ल जी भक्ति को केवल भक्ति, सात्विकता के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। 'देवदासी प्रथा' का जिक्र करके भी वे उसे पुनः धर्म, मर्यादा, मूल्यों की धर्मिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया से नत्थी कर देते हैं। देवदासी परम्परा के पीछे की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर वे चुप रह जाते हैं। अन्यथा स्त्री के इस धर्मिक माधुर्य भाव का सामाजिक–सांस्कृतिक आधर भी सामने आ जाता। गुह्य तथा रहस्य की प्रवृत्ति के रूप में दिखने वाले इस स्त्री भाव और चुनाव का भौतिक आधार भी प्रस्तुत किया जा सकता था। प्रत्येक भक्ति शाखाओं में जितनी भी स्त्री भक्त रही हैं, उन्हें हमेशा एक अध्यात्मिक क्षेत्र के अन्तर्गत रखकर उन पर लिखा गया है। वास्तव में प्रत्येक भक्ति शाखा की सियाँ उस क्षेत्र के ऐतिहासिक–सामाजिक यथार्थ को संकेतित करती हैं। जबकि उन्हें हमेशा 'पुरुष भक्तों की सूची में ही सम्मिलित कर लिया जाता है, कोई पृथक विश्लेषण नहीं किया जाता है।'[12]

विद्युत भागवत के अनुसार 'इस सार्वभौमिक (एकरूपीय) कैटगरी का पूर्व–वर्चस्व मध्यकालीन स्त्री संतों (भक्तों) की एजेंसी को धुंधला देती है। ज्ञान के क्षेत्र से उनकी अभिव्यक्तियों को निष्कासित/बहिष्कृत कर दिया जाता है। ... स्त्री संतो (भक्तों) को हमेशा से पुरुष संतों की आश्रिता के रूप में अल्पमूल्यांकित किया जाता रहा है।'[13]

आचार्य शुक्ल माधुर्य भाव को काफी हद तक बाहरी प्रभाव मानते हैं वे लिखते हैं: ''मुसलमानी जमाने में इन सूफियों का प्रभाव देश की भक्ति भावना के स्वरूप पर बहुत कुछ पड़ा। माधुर्य भाव को प्रोत्साहन मिला। माधुर्यभाव की जो उपासना चली आ रही थी, उसमें सूपिफयों के प्रभाव से 'आभ्यंतर मिलन', 'मूर्च्छा', 'उन्माद' आदि की भी रहस्यमयी योजना हुई। मीराबाई और चैतन्य महाप्रभु दोनों पर सूफियों का प्रभाव पाया जाता है।''[14] पुनः यहां पर शुक्ल जी मीरा को स्त्री समाज या उस काल की स्त्री–दशा, अनुभूति से जोड़कर देखने की बजाय भक्ति के संदर्भ में सूफियों के प्रभाव से युक्त देखते हैं। इस तरह मीरा को वे केवल संत के रूप में परिभाषित करते हैं। राजपुताने में स्त्री जाति की जीवन–दशाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं बैठाते। यह एक प्रकार से स्त्री–भक्ति को धर्म, दर्शन की सीमा में ही देखने का उदाहरण है। एक अर्थ में यह स्त्री की भक्ति को उस समय समाज की आंतरिक सम्बन्ध व्यवस्था से काटकर या निरपेक्ष रूप में देखना हुआ। इसीलिए मीरा आ॰ शुक्ल के इतिहास में एक माधुर्य भाव की संत भक्तिन मात्रा में 'रिड्युस' होकर रह जाती हैं।

ए॰ के॰ रामानुजन के अनुसार ''भारतीय (स्त्री) संतों के जीवन में 'शादी' एक 'मूद्दा' (issue) है, इसी रूप में यह पुरुष संतों के लिए नहीं है। उच्च और निम्न दोनों ही वर्गों के लिए यह मूद्दा (issue) नहीं है।.....भक्ति परम्परा में स्त्री और पुरुषों की अनुभूतियाँ और विषयवस्तु भिन्न होने के आधार को स्पष्ट करते हुए ए॰ के॰ रामानुजन लिखते हैं: 'ऊँची जातियों के पुरुषों का संघर्ष एक पूरी व्यवस्था के साथ था, प्रायः इसे व्यवस्था के भीतर और पारस्परिक सम्बन्ध वाले शत्रु के रूप में देखा, जबकि एक स्त्री संत का संघर्ष परिवार और पारिवारिक मूल्यों के साथ है।'[15]

'स्त्री संत स्त्रैण ही रह जाती है क्योंकि उसके पास कोई छत नहीं, ना ही शारीरिक साहस, ना ही सामाजिक सत्ता (शक्ति), ना ही ध्रुवता, ना ही अध्यात्मिक गौरव'[16]

रामानुजन के अनुसार'भक्ति आंदोलन अपने आरम्भ में विद्रोही रहा, अन्ततः वह भी सामान्यकृत हो गया' किन्तु स्त्री भक्त परम्परा को तो कभी, न क्रांतिकारी माना गया, न ही कोई विद्रोही चेतना वाला। जबकि भक्ति–रचनाएँ (खासकर स्त्री भक्तों की रचनाएँ) अधिक मानवीय ,वैकल्पिक और अधिक सृजनात्मक जीने और व्यवहार के तरीके प्रदान करते हैं।'[17]

मीरा के प्रसंग में शुक्ल जी लिखते हैं ''मीरा की उपासना 'माधुर्यभाव' की थी अर्थात् वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थी .... इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है।''[18]

''इसी ढंग की उपासना (सूफियों की माधुर्य भाव की) का प्रचार सूफी भी कर रहे थे। अतः उनका संस्कार इन पर अवश्य कुछ पड़ा। जब लोग इन्हें खुले मैदान मंदिरों में पुरुषों के सामने जाने से मना करते, वे कहतीं, कि कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष कौन है जिसके सामने लज्जा करूँ?''[19]

---

10. वही, पृ॰ 127
11. वही, पृ॰ 127
12. Ganesh, Kamla and Thakkar, Usha, Culture and Making of identity in contemporary India, Published by Saga, New Delhi, 1st Edition, 2005, P.N. 167
13. वही, पृ॰ 167
14. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृ॰ 127
15. वही, पृ॰ 172
16. वही
17. वही
18. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृ॰ 146
19. वही, पृ॰ 146

शुक्ल जी मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं, किन्तु उस माधुर्य भक्ति के स्वीकार के पीछे प्रचलित लोक–व्यवहार, स्त्री–औचित्य की कसौटियों की कैसी नकार है? इस पर दृष्टि नहीं डालते, मीरा भक्त तो थी, लेकिन वह भक्तिकाल के बाकी संत भक्तों की सी नहीं थी,ऐसे में मीरा की भक्ति का लौकिक आधार शुक्ल जी के साहित्येतिहास में अनुत्तरित ही रह जाता है। यदि मीरा एक सामान्य भक्त थी तो उसकी एकल भक्ति से इतने सवाळ क्यों जुड़े थे? इसका कारण स्पष्ट है,कि हमारे सामने स्त्री भक्तों की कोई दृश्यमान परम्परा नहीं है, अतः मीरा न सिर्फ उस समाज बल्कि शुक्ल जी के साहित्येतिहास में भी संत भक्तों की परम्परा में अपवाद की तरह ग्रहण और स्थापित की गई है।

आचार्य शुक्ल मीरा को संत परम्परा में अपवाद स्वरूप ही 'ट्रीट' करते हैं। मीरा के पदों में जो आत्मकथ्य या समाज की स्त्री समझ है, उस पर कोई टिप्पणी यहाँ नहीं मिलती। न ही स्त्री भक्त परम्परा की ओर कोई संकेत ही मिलता।

रीतिकाल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'रीति के अन्य कवियों' के प्रसंग में संख्या–6 में 'आलम' का परिचय देते हुए 'शेख' का परिचय देते है।इसी प्रसंग में शुक्ल जी ने आलम की पत्नी और प्रेमिका शेख (रंगरेजिन)के रचना काल के बारे में भी कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, लेकिन अलग से उनको 'फोकस' करके काल, स्थान, रचना का नाम आदि कोई वृत्त नहीं दिया गया। शुक्ल जी लिखते हैं:''आलम, शेख नाम की रंगरेजिन के प्रेम में फंसकर पीछे से मुसलमान हो गये.....शेख रंगरेजिन भी अच्छी कविता करती थी।''[20]

शेख का परिचय''शेख बहुत चतुर और हाजिर जवाब स्त्री थी... 'आलम केलि' में बहुत–से कवित्त शेख के रचे हुए हैं। आलम के कवित्त–सवैयों में भी बहुत–सी रचना शेख की मानी जाती है।''[21] शुक्ल जी ने 'आलम' कवि के वर्णन उल्लेख में शेख और उनकी कविताई को एक अनुषंगी रूप में ही उल्लेखित किया है, उनका कोई स्वतंत्र परिचय नहीं मिलता। जबकि शेख एक रंगरेजिन स्त्री के रूप में जो रचना करती होगी, वह किसी भी दरबारी कवि से भिन्न ही रही होगी।

प्रसंगवही संख्या–13, के लिए शुक्ल जी लिखते हैं''भक्तवर नागरीदास' जी ;यानि प्रसिद्ध कृष्णगढ़ नरेश महाराज सांवत सिंह (सम्वत् 1756 से सम्वत् 1804 में दिल्ली के शाही दरबार में थे) वृंदावन में इनके साथ इनकी उपपत्नी 'बणीह जी' भी रहती थीं, जो कविता भी करती थीं।''[21]

आ॰ शुक्ल 'बणीठ जी' का परिचय उनके नजदीकी पुरुष के संदर्भ (महाराज सावंत सिंह की उपपत्नी) में देते हैं। बणीठ जी की किसी रचना का या इनका कोई जीवनवृत नहीं देते। मात्र इस एक पंक्ति के अलावा ये इनके बारे में कोई सूचना नहीं देते।

आधुनिक काल (गद्य भाग)

प्रस्तुत प्रसंग में शुक्ल जी पहले नाटकों का फिर उपन्यासों का उल्लेख करते हैं। फिर कहानी और आधुनिक कविता पर लिखते हैं। ''द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रकट होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे। 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष (सम्वत् 1957/सन् 1900) में पं॰ किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती नाम की कहानी छपी जो मौलिक

जान पड़ती है....उसके उपरांत 'बंगमहिला' (सरोज बाला घोष) का स्थान है जो मिरजापुर निवासी प्रतिष्ठित बंगाली सज्जन 'बा॰ राम प्रसन्न घोष' की पुत्री और बा॰ पूर्णचंद की धर्मपत्नी थींउन्होंने बहुत सी कहानियों का बंगला से अनुवाद तो किया ही, हिंदी में कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखी जिनमें से एक थी 'दुलाई वाली' जो संवत् 1964 की सरस्वती (भाग–8, संख्या–5) में प्रकाशित हुई।''[22]

यहाँ पर शुक्ल जी बंग महिला को पिता और पुत्री के संदर्भ में परिचित करा रहे हैं। उनकी रचनात्मक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कोई टिप्पणी या कथन नहीं दिया गया।आचार्य शुक्लन तो नाटक में ही न ही निबंधों में, न ही उपन्यासकारों में द्वितीय उत्थान तक किसी स्त्री रचनाकर का जिक्र तक नहीं करते।

प्रकरण–1 (काव्य खण्ड)सम्वत् (1900–1925)

प्रस्तुत प्रसंग में शुक्ल जी 'पुरानी धारा'के अंतर्गत 'ब्रजभाषा' में लिखने वाले कवियों का उल्लेख करते हैं, समय सीमा सम्वत् 1925 तक है। लेकिन किसी स्त्री का उल्लेख नहीं करते।

प्रकरण–4 काव्य खण्ड (सम्वत् 1975) सन् 1918

'नयी धाराः तृतीय उत्थानः वर्तमान काव्यधाराएँ'शीर्षक के अन्तर्गत आचार्य शुक्ल जी लिखते हैं''सर्व श्री सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, ठाकुर गुरु भक्त सिंह, उदय शंकर भट्ट इत्यादि कई कवि विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छन्दता

---

20. वही
21. वही, पृ॰ 257
22. वही, पृ॰ 359

का मर्मपथ ग्रहण करके चल रहे हैं।''[23]

''स्वच्छंद धारा'' प्रसंग में वे लिखते हैं ''त्रिधारा नाम के संग्रह में 'श्री केशवप्रसाद पाठक और श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की चुनी हुई कविताओं के साथ उनकी भी कुछ प्रसिद्ध कविताएँ उद्धत की गयी हैं।''[24] अतः शुक्ल जी सुभद्रा कुमारी चौहान तक का उल्लेख मात्रा सूचना के रूप में देते हैं।

प्रकरण–4 (काव्यखण्ड) के संदर्भ में छायावाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी महादेवी वर्मा के लिए लिखते हैं कि:

''छायावाद का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिंदी काव्य क्षेत्र में चलने वाली श्री महादेवी वर्मा ही हैं।....छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी वर्मा जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इसके हृदय का भाव केंद्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ छूट–छूटकर झलक मारती रहती हैं। वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं उसके आगे मिलनसुख को भी वे कुछ न गिनती।''[25]

आचार्य शुक्ल छायावादी कवि चतुष्टय में महादेवी वर्मा का सबसे स्थूल उल्लेख करते हैं। महादेवी वर्मा को ही मूलतः वे छायावादी रहस्यवाद के भीतर मानते हैं। इस रहस्यवाद को वे 'उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही' के रूप में चिन्हित करते हैंआगे इस वेदना को लोकोत्तर कह, इनमें अनुभूतियों की बजाय रमणीय कल्पना होने का संदेह भी देखते हैं। इसीलिए शुक्ल जी महादेवी की वेदना और पीड़ा को युगल और लोकोत्तर सत्ता में से ही किसी की विरह भावना मात्रा में 'रिड्युज' कर देते हैं।

वे टिप्पणी करते हैं''पीड़ा का चसका इतना है कि ...''[26] मूलतः शुक्ल जी की यह प्रस्थापना परम्परागत समाज में स्त्रियोचित, पौरुषोचित के द्वैध से उपजी लगती है। जिसमें स्त्री की छवि और व्यक्तित्व को स्थापा करने वाला बना दिया जाता है।

शुक्ल जी भी इसी 'स्त्रियोचित' विभाजन वाली मानसिकता का परिचय देते हैं। आ॰ शुक्ल महादेवी की वेदना, पीड़ा का शुक्ल जी न तो उस समाज और समाज के उद्वेलनों से कोई सम्बन्ध बैठाते हैं न ही इसे भारतीय स्त्री के विशिष्ट जीवन संदर्भों से जोड़ने की कोशिश करते हैं। पफलतः छायावादी कवि चतुष्टय में महादेवी को सबसे अंतिम स्थान और मात्रा 22 छोटी–बड़ी पंक्तियों में उन्हें निपटा भी देते हैं, आलोचना भी कर देते हैं।

निष्कर्षतः आचार्य रामचंद्र शुक्ळ के इतिहास में पुरूष–ळेखन की तुळना में हमें कुछ गिनी चुनी ळेखिकाओं के ही नाम मिळते हैं और जिनके मिळते है उनके विश्ळेषण में स्त्री–दृष्टि का अभाव है।

---

[23]. वही, पृ॰ 461
[24]. वही, पृ॰ 501
[25]- वही, पृ॰ 500
[26]. वही, पृ॰ 500